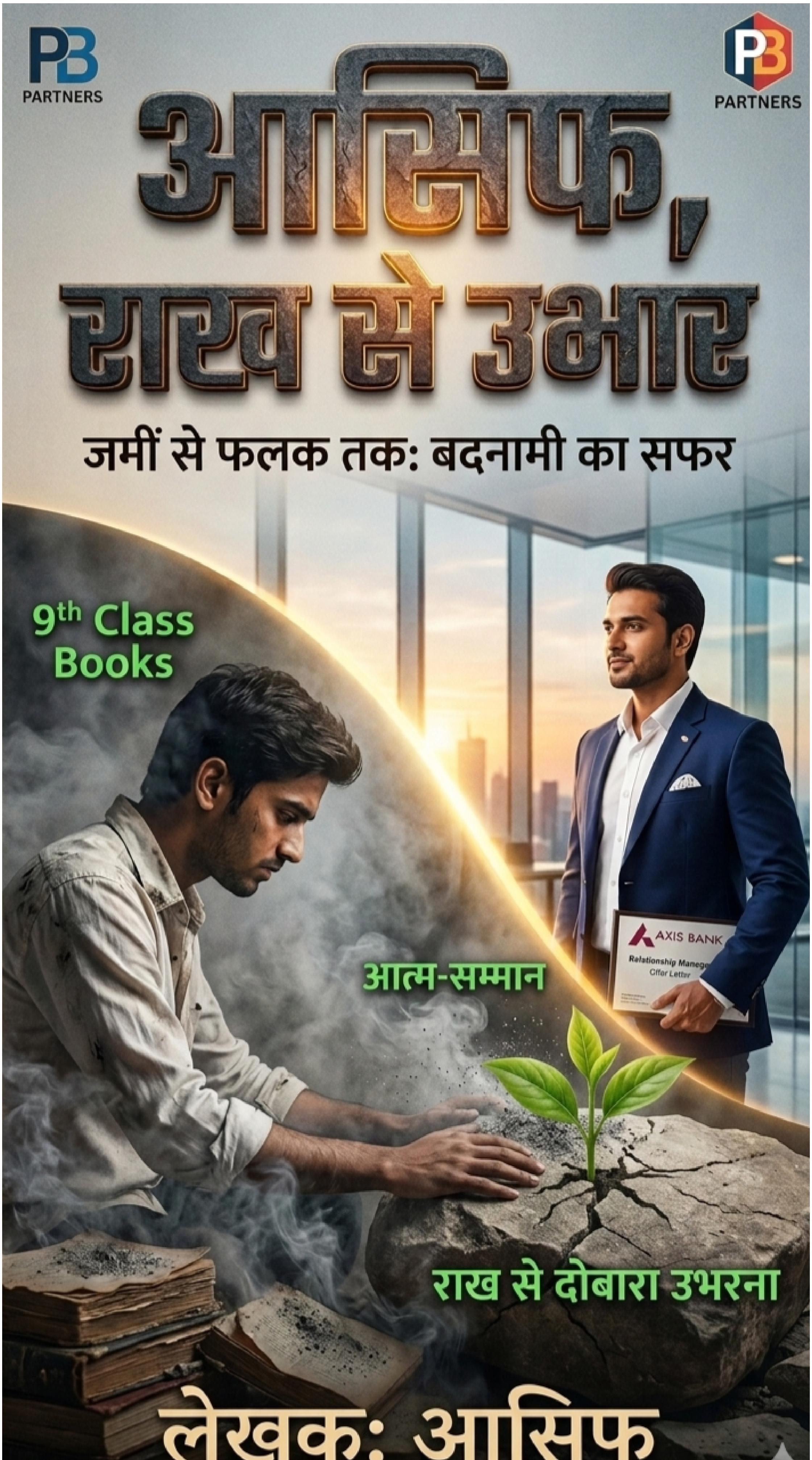
PB PARTNERS
PB PARTNERS
आसिफ, राख से उभार
जमीं से फलक तक: बदनामी का सफर
9th Class Books
AXIS BANK
Relationship Manager
Offer Letter
आत्म-सम्मान
राख से दोबारा उभरना
लेखक: आसिफ

प्रस्तावना: मेरी कलम से

जब मैं यह किताब लिखना शुरू कर रहा था, तो मेरे हाथ कांप रहे थे। यह आसान नहीं है—अपनी गलतियों को दुनिया के सामने लाना, अपनी नाकामी को स्वीकार करना और उन जख्मों को दोबारा कुरेदना जिन्हें समय ने मुश्किल से भरा है। लेकिन फिर मैंने सोचा, अगर मेरा सच किसी एक भी डूबते हुए इंसान के लिए तिनके का सहारा बन सके, तो मेरा यह दर्द लिखना सार्थक हो जाएगा।

यह कहानी किसी 'सुपरहीरो' की नहीं है। यह कहानी है एक आम इंसान की, जिसे अपनी काबिलियत पर बहुत गुरूर था, जो कॉलेज का टॉपर था, और जिसे लगा था कि दुनिया उसके इशारों पर चलेगी। लेकिन ज़िंदगी ने मुझे बहुत बेरहमी से सिखाया कि ऊँचाई पर पहुँचना जितना मुश्किल है, वहाँ से गिरना उतना ही आसान।

इस किताब के पन्नों में आपको मेरा संघर्ष दिखेगा—सरकारी स्कूल की धूल भरी गलियों से लेकर बैंक के शानदार केबिन तक का। आपको वह 'आसिफ' भी दिखेगा जिसने 120 रुपये की फीस के लिए संघर्ष किया, और वह 'आसिफ' भी जिसने अपनी एक गलती की वजह से 4 साल तक ज़िंदा लाश बनकर गुज़ारे।

मैं चाहता हूँ कि आप इस किताब को पढ़ते हुए सिर्फ मेरी जीत न देखें, बल्कि उस अकेलेपन और जिल्लत को भी महसूस करें जिसे मैंने सहा है। क्योंकि असली जीत वही है जो राख के ढेर से निकलकर हासिल की जाए। यह किताब उन सबके लिए है जिन्हें समाज ने 'फेंक दिया' है या 'बेकार' समझ लिया है। याद रखिएगा, आपकी कहानी अभी खत्म नहीं हुई है।

— आपका अपना,

आसिफ

आभार

किसी भी बड़ी मंज़िल तक पहुँचने का रास्ता कभी अकेला नहीं होता। इस किताब को हकीकत बनाने के सफर में, मैं उन तमाम लोगों का शुक्रगुज़ार हूँ जिन्होंने मुझ पर तब यकीन किया जब मैं खुद पर से भरोसा खो चुका था।

मेरे वालिदैन (अम्मी-अब्बू): आपकी दुआओं और अटूट भरोसे के बिना मैं आज यहाँ न होता। आपने मेरी गलतियों को माफ कर मुझे फिर से खड़ा होने का हौसला दिया। आप ही मेरी असली ताकत हैं।

मेरे अजीज दोस्त मुशीर: मुशीर, तुमने दोस्ती का जो फर्ज निभाया है, वह मिसाल है। जब दुनिया मुझे शक की नज़रों से देख रही थी, तब तुम्हारा साथ ही मेरा सबसे बड़ा सहारा था।

मेरी जीवनसंगिनी: शुक्रिया मेरे जीवन में आने के लिए। तुमने न सिर्फ मुझे अपनाया, बल्कि मेरे अतीत के ज़ख्मों को भरने में मेरा सबसे ज्यादा साथ दिया।

PB Partners और एक्सिस बैंक: उन संस्थानों का शुक्रिया जिन्होंने मेरी काबिलियत पर भरोसा किया और मुझे एक प्रोफेशनल पहचान वापस दिलाने में मदद की।

मेरे शुभचिंतक और आलोचक: मैं उन सभी का आभारी हूँ जिन्होंने मेरा साथ दिया, और उनका भी जिन्होंने मेरा साथ छोड़ा। आप सबकी वजह से ही मैं खुद को पहचान पाया और आज यहाँ तक पहुँच सका।

सबसे आखिर में, उस परवरदिगार का लाख-लाख शुक्र है, जिसने मुझे गिरने तो दिया, मगर टूटने नहीं दिया। जिसने मेरे लिए बंद रास्तों के बाद भी एक नया और बेहतर रास्ता खोल दिया।

— आपका अपना,

आसिफ

लेखक का परिचय

आसिफ एक ऐसे व्यक्तित्व का नाम है जिसने जीवन के दोनों छोरों को बहुत करीब से देखा है—सफलता के शिखर को भी और संघर्ष की गहरी खाइयों को भी। एक सरकारी स्कूल से अपनी शिक्षा की शुरुआत करने वाले आसिफ ने बचपन से ही अभावों को अपनी ताकत बनाया। उन्होंने कॉलेज के दिनों में कॉमर्स टॉपर बनकर यह साबित किया कि संसाधनों की कमी कभी प्रतिभा का रास्ता नहीं रोक सकती।
उनकी यह पहली किताब, **'आसिफ: राख से दोबारा उभरना'**, महज़ एक संस्मरण नहीं है, बल्कि उनके जीवन का वह निचोड़ है जो उन्होंने बदनामी, अकेलेपन और अपनों के विश्वासघात से सीखा है। आसिफ ने न केवल समाज की रूढ़ियों और तानों का सामना किया, बल्कि खुद के अंदर चल रहे द्वंद्व को जीतकर एक नई पहचान बनाई।
वर्तमान में, वह **PB Partners** में **'रिलेशनशिप मैनेजर'** के रूप में कार्यरत हैं और अपनी नई शादीशुदा ज़िंदगी की खुशियों के साथ-साथ अपने पेशेवर करियर को एक नई ऊंचाई पर ले जा रहे हैं। आसिफ का मानना है कि इंसान की असली पहचान उसकी डिग्री या उसका बैंक बैलेंस नहीं, बल्कि उसका वह 'आत्म-सम्मान' है जिसे वह गिरकर दोबारा हासिल करता है।

यह किताब उनके उसी अटूट इरादे और कभी न हार मानने वाले जज्बे की गूँज है।

लेखक की ओर से एक पंक्ति:

"मैं उन लोगों का शुक्रगुजार हूँ जिन्होंने मेरा हाथ छोड़ा, क्योंकि उनके छोड़ने के बाद ही मुझे पता चला कि मैं अपना हाथ थामकर भी दुनिया जीत सकता हूँ।"

1: चिराग और तूफ़ान

उस बस्ती की आब-ओ-हवा में किताबों की खुशबू नहीं, बल्कि पसीने और धूल की गंध बसी थी। मैं एक ऐसी बिरादरी में पैदा हुआ था जहाँ सूरज निकलने का मतलब 'सपनों' का जागना नहीं, बल्कि 'जरूरतों' की जद्दोजहद शुरू होना था। वहाँ बचपन की परिभाषा खिलौने नहीं, बल्कि कम उम्र में हाथों में थमा दिए गए औज़ार थे। लोग पढ़ना-लिखना नहीं जानते थे, बस इतना जानते थे कि आज हाथ चलेंगे तो कल चूल्हा जलेगा।

मेरे घर की स्थिति भी अलग नहीं थी। मुझसे बड़ी चार बहनें, और मुझसे छोटे एक भाई और एक बहन—कुल आठ लोगों का कुनबा। ज़िम्मेदारियों का पहाड़ मेरे अम्मी और अब्बू के कंधों पर था। पर खुदा गवाह है, उन कंधों ने कभी थकान की नुमाइश नहीं की। अम्मी-अब्बू के पास खुद कोई रास्ता नहीं था, कोई नक्शा नहीं था कि मंज़िल तक कैसे पहुँचना है, लेकिन उनके पास एक 'ज़िद' थी—मुझे पढ़ाने की। उन्होंने अपनी जरूरतों को गला घोंटकर मेरी तालीम की बुनियाद रखी।

मेरी पढ़ाई का पहला पड़ाव बना 'श्री गुरु तेग बहादुर पब्लिक स्कूल'। नर्सरी से यूकेजी तक का वह सफर आज भी धुंधला सा याद है। जब क्लास में टीचर मुझे 'अव्वल' (First) आने पर सबके सामने खड़ा करती थीं और पूरा कमरा तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठता था, तब मुझे पहली बार अहसास हुआ कि 'पढ़ाई' वह जादुई चाबी है जो मुझे इस तंगहाली से बाहर निकाल सकती है। वे तालियाँ सिर्फ मेरा हौसला नहीं बढ़ाती थीं, बल्कि अम्मी-अब्बू की उन रातों की जागृति का सिला (पुरस्कार) थीं।

लेकिन असली मोड़ तब आया जब कुदरत ने खुद हाथ बढ़ाया।

मेरे अब्बू ने जिस स्कूल से तालीम हासिल की थी, उसी स्कूल के प्रिंसिपल एक दिन अचानक हमारे घर आए। उन्होंने मुझे देखा, शायद मेरे चेहरे की चमक या मेरी अम्मी-अब्बू की आँखों की उम्मीद को पढ़ लिया। उन्होंने बड़े विश्वास से कहा, "अब से यह लड़का हमारे स्कूल में पढ़ेगा... और इसकी फीस माफ़ है।"

वह जुमला किसी मसीहा की आवाज़ जैसा था। गरीबी के समंदर में डूबते हुए परिवार के लिए वह एक तिनके का सहारा नहीं, बल्कि एक मज़बूत कश्ती थी। दिल को जो सुकून उस पल मिला, वह शब्दों में बयां करना नामुमकिन है। इसके बाद मेरा दाखिला 'विवेकानंद पब्लिक स्कूल' में हुआ। वहाँ मैंने अपनी आठवीं कक्षा तक की पढ़ाई पूरी की। उन दिनों मुझे लगता था कि रास्ते आसान हो रहे हैं, पर मुझे नहीं पता था कि 'परिस्थिति' और 'किस्मत' का असली खेल तो अभी शुरू होना बाकी था।

2: डर की परछाई और उम्मीद का हाथ

आठवीं तक का सफर सुकून भरा था, लेकिन असली दुनिया की तपिश अब महसूस होने वाली थी। मैंने 'सनातन धर्म इंटर कॉलेज' में कदम रखा। इस कॉलेज की दीवारें पढ़ाई से ज्यादा गुंडागर्दी और आए दिन होने वाली मारपीट की कहानियों के लिए मशहूर थीं। एक सीधा-साधा लड़का, जिसके पास सिर्फ अपनी किताबें और अम्मी-अब्बू के सपने थे, उसके लिए यह माहौल किसी खौफनाक मंजर से कम नहीं था।

हालांकि, कॉलेज की फिजा बदल रही थी। नए प्रिंसिपल डॉक्टर विकास कुमार ने अनुशासन का ऐसा हंटर चलाया कि बड़े-बड़े बदमाशों की हिम्मत पस्त हो गई। लेकिन इस अनुशासन की एक दूसरी तस्वीर भी थी—टीचर्स की बेइंतहा सख्ती। होमवर्क पूरा न होने पर मिलने वाली मार ने मेरे बाल-मन में एक ऐसा खौफ पैदा कर दिया कि मैंने स्कूल जाना ही छोड़ दिया।

वह डर इतना गहरा था कि मुझे लगा अब पढ़ाई मेरे बस की बात नहीं। स्कूल न जाने का सिलसिला लंबा हुआ, तो घर वालों की चिंता भी बढ़ी। उन्हें लगा कि शायद मेरी किस्मत में कलम नहीं, बल्कि औजार लिखे हैं। मशविरा हुआ कि मुझे 'एसी (AC) रिपेयरिंग' का काम सिखाया जाए। तर्क यह था कि इस काम में हाथ साफ हो गया तो सऊदी अरब जाकर पैसा कमाया जा सकता है और परिवार की गरीबी का बोझ हल्का हो सकता है। मेरे अब्बू जी ने जब इस बारे में लोगों से बात की, तो कुछ नेक सलाहकारों ने कहा—"अभी बच्चा छोटा है, कम से कम 10वीं तो पूरी करा लो।"

लेकिन मेरे कदम स्कूल की तरफ जाने से कतरा रहे थे। स्कूल में मेरा नाम कट चुका था, हाजिरी सिफर (Zero) थी और फीस का बोझ अलग। ऐसा लग रहा था कि 'परिस्थिति'

ने मेरी पढ़ाई पर पूर्णविराम लगा दिया है। लेकिन तभी मेरी जिंदगी में एक फरिश्ता बनकर आए 'श्री अनुज शर्मा जी'।

अनुज जी वही प्रिंसिपल थे जिन्होंने विवेकानंद पब्लिक स्कूल में मुझे सहारा दिया था। उन्हें जब पता चला कि एक होनहार लड़का सिर्फ डर और हालात की वजह से पिछड़ रहा है, तो उन्होंने अपनी साख दांव पर लगा दी। उनकी सिफारिश और रसूख का असर था कि जिस स्कूल के दरवाजे मेरे लिए बंद हो चुके थे, वे दोबारा खुल गए।

कटा हुआ नाम फिर से रजिस्टर में चढ़ा। वह पल मेरी जिंदगी का 'री-बर्थ' (पुनर्जन्म) था। मुझे समझ आया कि किस्मत कभी-कभी आपको गिराती है, लेकिन अगर नीयत साफ हो, तो कोई न कोई हाथ आपको थामने के लिए जरूर आगे आता है।

3: मुशीर—एक जिद्दी साया

कॉलेज में दोबारा कदम तो पड़ गए थे, लेकिन मन अब भी उचाट था। सनातन धर्म इंटर कॉलेज की उस भीड़ में मैं खुद को अकेला महसूस करता था। वहां हज़ारों लड़के थे, लेकिन 'संगत' ऐसी नहीं थी जो मुझे किताबों की तरफ मोड़े। मेरा मन अक्सर बहाने ढूंढता—कभी सिरदर्द, कभी थकान, तो कभी बस यूँ ही घर पर बैठ जाने की चाहत। तभी मेरी मुलाकात 'मुशीर' से हुई।

मुशीर—एक साधारण सा लड़का, जिसके चेहरे पर न कोई दिखावा था, न ही जिसकी आंखों में आवारागर्दी की चमक। उसे न खेलने का शौक था, न ही उसे दुनिया के 'शो-ऑफ' से कोई सरोकार था। उसके पास अगर कुछ था, तो वह था—'पढ़ने और कामयाब होने का जुनून'।

शुरुआत में हमारी दोस्ती हुई, तो मुझे सुकून मिला कि चलो, कोई तो है जो संजीदा है। लेकिन जल्द ही मुशीर मेरे लिए एक 'मुसीबत' बन गया। मुसीबत इसलिए, क्योंकि वह मेरी कामचोरी का सबसे बड़ा दुश्मन था। जिस दिन मैं कॉलेज न जाने का मन बनाता, मुशीर मेरे घर के दरवाजे पर खड़ा मिलता।

मुझे याद है, मैंने उसे कई बार झिड़का, डराया, और यहाँ तक कि धमकियाँ भी दीं—"तेरी वजह से मुझे कॉलेज जाना पड़ता है, आइंदा से मुझे बुलाने मत आना!" लेकिन मुशीर जैसे किसी और ही मिट्टी का बना था। उसे ज़िद थी, एक ऐसी ज़िद जो

आजकल के दोस्तों में कम ही दिखती है—**खुद के साथ-साथ अपने दोस्त को भी कामयाबी की दहलीज़ तक ले जाने की ज़िद।**

वह रोज़ आता, मेरी हर घुड़की को अनसुना करता और मेरे सामने तब तक खड़ा रहता जब तक मैं तैयार होकर उसके साथ चल न दूँ। उसकी इसी ज़िद और ट्यूशन की मेहनत ने रंग दिखाया। जिस लड़के ने पढ़ाई छोड़ने का मन बना लिया था, उसने नवीं कक्षा (9th) अच्छे नंबरों से पार कर ली।

उस दिन मुझे अहसास हुआ कि परिस्थिति चाहे कितनी भी खराब हो, अगर **'मुशीर'** जैसा कोई हाथ थाम ले, तो रास्ता आसान हो जाता है। अब हम दोनों की आँखों में एक ही सपना था—10वीं की बोर्ड परीक्षा। हमने ठान लिया था कि हम सिर्फ पास नहीं होंगे, बल्कि 'टॉप' करेंगे। हमने साथ मिलकर रातें जागने और किताबों से लड़ने का पक्का इरादा कर लिया था।

4: एक मशाल, बीस हाथ

अब मेरी मेहनत सिर्फ मेरी निजी जंग नहीं रह गई थी। वह एक उम्मीद बन चुकी थी—मेरे अम्मी-अब्बू की उम्मीद, और मेरी पूरी बिरादरी की उम्मीद। जिस बस्ती में किताबों का ज़िक्र तक नहीं होता था, वहाँ अब लोग मेरी मिसाल देने लगे थे। मेरी लगन का असर कुछ ऐसा हुआ कि मुझे पढ़ते देख बिरादरी के 20 से ज्यादा बच्चों ने स्कूल में दाखिला ले लिया। अचानक मुझ पर एक अनकहा सा बोझ आ गया था; मुझे अहसास हुआ कि अगर मैं रुक गया या हार गया, तो उन 20 बच्चों की उम्मीदें भी दम तोड़ देंगी।

मेरा कामयाब होना अब उन सबके लिए कामयाबी का दरवाज़ा खोलने जैसा था। मुशीर और मैं अब एक जिस्म और दो जान की तरह थे। हमारी सुबह किताबों से शुरू होती और रातें नोट्स बनाते हुए गुज़रतीं। 10वीं का रिजल्ट आया, तो वह किसी जश्न से कम नहीं था। हमने कॉलेज तो टॉप नहीं किया, लेकिन हमारे नंबर इतने शानदार थे कि बिरादरी में शोर मच गया। सबसे खूबसूरत बात यह थी कि मुशीर और मेरे नंबरों में सिर्फ 5 अंकों का फासला था। मुशीर मुझसे 5 नंबर आगे था, और मेरी खुशी इस बात पर दोगुनी थी। उसकी वही 'ज़िद' और 'दोस्ती' आज कागज़ पर अंकों के रूप में चमक रही थी। वह हार-जीत का मुकाबला नहीं, बल्कि साथ चलने का इनाम था।

10वीं की इस कामयाबी ने हमारे इरादों को फौलाद बना दिया। अब हमारा लक्ष्य बड़ा था। हमने तय किया कि 12वीं में हम सिर्फ पास होने के लिए नहीं, बल्कि 'उत्तर प्रदेश की टॉप-10 लिस्ट' में जगह बनाने और जिले को टॉप करने के लिए लड़ेंगे।

11वीं कक्षा का साल अनुशासन और तपस्या का साल था। कॉलेज का माहौल अजीब था—सुबह की क्लास में 70 बच्चे होते, लेकिन दोपहर ढलते-ढलते और आखिरी पीरियड आते-आते क्लास में सिर्फ 5 बच्चे बचते। बाकी सब भाग जाते। लेकिन हम उन पाँचों में हमेशा मौजूद रहते। हमारे टीचर्स ने जब देखा कि हज़ारों की भीड़ में ये दो लड़के पत्थरों की तरह जमे हुए हैं, तो उन्होंने भी अपनी पूरी जान झोंक दी। वे हमें उन 5 बच्चों की तरह नहीं, बल्कि 500 बच्चों की ऊर्जा के साथ पढ़ाते थे। उन्हें हममें एक 'संभावना' नज़र आने लगी थी।

हमने 11वीं भी 'टॉप 3' की लिस्ट में रहकर पार की। लेकिन इस छोटी जीत ने हमारे पैर ज़मीन से नहीं उठाए, क्योंकि हमारी निगाहें तो बोर्ड की उस ऊँची चोटी पर थीं जिसे फतह करना अभी बाकी था।

5: 120 रुपये और बोर्ड की दहलीज

12वीं कक्षा का साल किसी तपस्या से कम नहीं था। जहाँ दुनिया के लिए यह सिर्फ एक बोर्ड परीक्षा थी, मेरे लिए यह वजूद की लड़ाई बन चुकी थी। पढ़ाई का जुनून सिर पर सवार था, लेकिन उसी के साथ एक कड़वी हकीकत दिल में खौफ पैदा कर रही थी—घर की आर्थिक तंगी।

एक तरफ लाइब्रेरी की शांत मेजें थीं और दूसरी तरफ घर के वह कोने जहाँ गरीबी की आहटें सुनाई देती थीं। मेरे लिए उस वक्त ₹120 की ट्यूशन फीस भी एक भारी भरकम बोझ बन गई थी। मैं सोचता कि अम्मी-अब्बू पहले ही अपनी हड्डियों का तेल जलाकर मुझे यहाँ तक लाए हैं, अब और कितना मांगूँ? लेकिन मेरे गुरुओं की दरियादिली ने मेरा रास्ता नहीं रुकने दिया। उन्होंने साफ कह दिया, "आसिफ, फीस की फिक्र मत कर, बस तू मेहनत कर। तेरी कामयाबी ही मेरी सबसे बड़ी फीस होगी।"

मैं और मुशीर अब एक मशीनी रफ्तार से काम कर रहे थे। सिलेबस खत्म हो चुका था, रिवीजन के दौर चल रहे थे और रोज़ अखबारों में छपने वाले टॉपर्स के टिप्स हमारे लिए किसी धार्मिक ग्रंथ की तरह थे। हमारा लक्ष्य अब सिर्फ 'पास' होना नहीं था, हमें तो उत्तर प्रदेश की उस फेहरिस्त में नाम दर्ज कराना था जहाँ पूरे सूबे की नज़रें होती हैं।

परीक्षा का दिन और वह अनोखा वादा:

जब बोर्ड परीक्षा शुरू हुई, तो किस्मत ने हमें अलग-अलग कमरों में डाल दिया। लेकिन मुशीर और मैंने एक अनोखा रास्ता निकाला। हमने अपनी घड़ियों का वक्त एक-दूसरे से मिला लिया। तय हुआ कि एक तय समय पर हम दोनों पानी या टॉयलेट का बहाना बनाकर बाहर आएंगे। वे 5 मिनट हमारे लिए किसी 'वॉर-रूम' की चर्चा जैसे थे। हम

गलियारे में मिलते, पेपर की मुश्किलों को डिस्कस करते, एक-दूसरे के संशय (doubts) दूर करते और फिर नई ऊर्जा के साथ अपने-अपने कमरों में लौट जाते। भले ही दीवारें बीच में थीं, पर हमारा दिमाग एक साथ ही चल रहा था।

परिणाम का वह ऐतिहासिक दिन:

रिजल्ट के दिन दिल की धड़कनें बेकाबू थीं। डर फेल होने का नहीं था, डर था 'उम्मीदों' के टूटने का। मुझे टॉपर्स की उस लिस्ट में जगह चाहिए थी, वरना मुझे लगता कि मेरा संघर्ष अधूरा रह गया। डर के मारे मैंने खुद अपना रिजल्ट चेक ही नहीं किया।

तभी फोन की घंटी बजी। वह मेरी क्लास के सबसे होशियार लड़के का फोन था। उसने चहकते हुए कहा, **"आसिफ भाई मुबारक हो! मैंने पूरी क्लास का रिजल्ट देखा है और सबसे ज्यादा नंबर आपके हैं!"**

मेरा दिमाग सुन्न हो गया। मैंने फौरन मुशीर को फोन लगाया। मुशीर की आवाज़ में वैसी ही खुशी थी जैसी 10वीं के वक्त मेरी आवाज़ में थी। उसने कहा, "आसिफ भाई, यह सच है! और इस बार 2 नंबर से आपने मुझे भी पीछे छोड़ दिया है!" जिस लड़के को डर की वजह से काम सीखने (AC रिपेयरिंग) भेजने की बात हो रही थी, आज उसने पूरे कॉलेज को टॉप कर दिया था। उस वक्त लगा कि 'परिस्थिति' ने हार मान ली है और 'मेहनत' ने अपना रास्ता खुद बना लिया है।

6: मेडल की चमक और धुंधला भविष्य

साल 2018—मेरे हाथ में 12वीं की मार्कशीट थी जिस पर 'टॉपर' का ठप्पा लगा था। घर और बिरादरी में जश्न का माहौल था। अम्मी-अब्बू की आँखों में एक चमक थी, उन्हें लगा था कि बस, अब जंग जीत ली गई है। गरीबी के दिन अब लदने वाले हैं। लेकिन उन्हें क्या पता था कि जिस मंज़िल को वे 'अंत' समझ रहे थे, वह तो एक और भी कठिन सफर की 'शुरुआत' थी।

ग्रेजुएशन में दाखिला तो हो गया, लेकिन यहीं से उम्मीदों के टूटने का सिलसिला शुरू हुआ। घर का बड़ा बेटा होने के नाते, मुझ पर एक अनकहा दबाव था। समाज और परिवार को लग रहा था कि अब घर की बागडोर मेरे हाथों में होगी, लेकिन मेरे सामने एक अजीब कशमकश थी। एक तरफ मेरी 'तालीम' थी जो मुझसे और वक्त मांग रही थी, और दूसरी तरफ 'पेट' था जो रोटी मांग रहा था।

मैंने सोचा कि पढ़ाई के साथ कुछ काम करूँ, पर विकल्प क्या थे? फल बेचना या सब्ज़ी की रेहड़ी लगाना। यहाँ आकर मेरा मन विद्रोह कर उठता। मैं सोचता—क्या इसीलिए मैंने रातों की नींद हराम की थी? क्या इसीलिए मैंने और मुशीर ने 120 रुपये की फीस के लिए मिन्नतें की थीं, ताकि अंत में मैं बाज़ार के किसी कोने में तराजू थाम कर खड़ा रहूँ? मेरा पढ़ा-लिखा आत्म-सम्मान मुझे यह करने से रोकता था, लेकिन गरीबी का शोर उससे कहीं ज्यादा ऊँचा था।

घर की आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं थी कि कोई छोटा-मोटा बिज़नेस शुरू किया जा सके। यहाँ से मेरी सोच में एक बड़ा बदलाव आया। मैं अक्सर आसमान की तरफ देखकर पूछता—"यह परिस्थिति है या किस्मत?" यह कौन तय कर रहा है कि एक टॉपर लड़का बाज़ार की दुकानों पर दिहाड़ी मज़दूरी करेगा? क्या वक्त के हालात हमारी काबिलियत से ज्यादा ताकतवर होते हैं?

मेरा और मुशीर का एडमिशन सरकारी कॉलेज में हो गया था, यह एक राहत थी। लेकिन सरकारी कॉलेज सिर्फ डिग्री दे सकते थे, 'संसाधन' नहीं। मैंने बाज़ार की दुकानों पर काम करना शुरू किया। दिन भर की भाग-दौड़ और धूल फांकने के बाद जो चंद रुपये मिलते, उनसे मुश्किल से किताबों और बस का खर्चा निकलता था। वह पढ़ाई, जिसमें पहले 'जुनून' था, अब एक 'बोझ' लगने लगी थी क्योंकि मेरा ध्यान पढ़ाई पर कम और जेब के खालीपन पर ज्यादा रहता था।

यहीं से मेरी आँखों से वह पर्दा हटा कि सिर्फ 'नंबर' लाने से दुनिया नहीं बदलती। दुनिया बदलने के लिए 'साधन' चाहिए होते हैं, जो मेरे पास नहीं थे। मेरी बिरादरी और घर वाले, जो मुझे अपना 'सितारा' समझ रहे थे, अब उनकी निगाहों में मायूसी उतरने लगी थी। उन्हें लगने लगा था कि शायद मैंने भी वही रास्ता चुन लिया है जो उनके बाप-दादाओं ने चुना था।

7: छह हज़ार की स्कॉलरशिप और टूटता आत्मविश्वास

बी.कॉम (B.Com) का पहला साल किसी तरह गुज़र गया। किस्मत ने थोड़ा साथ दिया और मुझे करीब छह हज़ार रुपये की स्कॉलरशिप मिल गई। उन रुपयों को हाथ में थामकर ऐसी राहत मिली जैसे तपती धूप में किसी ने ठंडे पानी की बौछार कर दी हो। अगले साल की फीस का इंतज़ाम तो हो गया, लेकिन ज़िन्दगी सिर्फ स्कूल या कॉलेज की फीस से नहीं चलती। किताब-कॉपियों से लेकर बस के किराए और रोज़मर्रा की छोटी-छोटी जरूरतों के लिए भी पैसा चाहिए था।

यही वह वक्त था जब मेरे अंदर एक अजीब सी जंग शुरू हो गई। मेरी उम्र के लड़के घरों की ज़िम्मेदारियाँ उठा रहे थे, और मैं अभी भी अपनी ज़रूरतों के लिए अम्मी-अब्बू की तरफ देख रहा था। उनसे पैसे मांगते वक्त मेरी ज़बान तालू से चिपक जाती थी। शर्म आती थी कि जिस उम्र में मुझे कमाकर उनके हाथों में रखना चाहिए, उस उम्र में मैं उनके खाली होते बटुए पर बोझ बन रहा था।

घर का माहौल अब बदलने लगा था। वह उम्मीद, जो 12वीं के रिजल्ट वाले दिन फूलों की तरह खिली थी, अब मुरझाने लगी थी। अब बातचीत में अक्सर तंज या मायूसी झलकने लगी। कभी-कभी दबे लफ्ज़ों में यह बात भी उठती कि—"शायद इसे पढ़ाकर गलती कर दी। अगर इसे किसी हुनर या काम में लगा दिया होता, तो आज यह घर का सहारा बनता, बोझ नहीं।"

वे बातें किसी नश्तर की तरह मेरे कलेजे में चुभती थीं। मुझे खुद पर गुस्सा आने लगा। वह 'टॉपर' होने का गुरूर, वह 'मेहनत' करने का जज्बा, सब कहीं खोने लगा था। मेरा आत्मविश्वास, जो कभी आसमान छूता था, अब ज़मीन में धंस रहा था। मैं रातों को जागकर यही सोचता कि—"क्या मैंने पढ़ाई का रास्ता चुनकर अपने परिवार के साथ नाइंसाफी की? क्या मेरी किस्मत में भी वही मज़दूरी लिखी है जो मैं दुकानों पर कर रहा था?"

पढ़ाई में मन लगना बंद हो गया था। जब घर में भूख और मजबूरी का साया हो, तो किताबों के शब्द धुंधले पड़ने लगते हैं। मुझे लगने लगा कि मैं एक ऐसे रास्ते पर चल पड़ा हूँ जिसकी कोई मंज़िल नहीं। हिम्मत जवाब दे रही थी, और पहली बार मुझे महसूस हुआ कि 'परिस्थिति' इंसान के 'हौसले' को कुचलने की ताकत रखती है।

8: डिग्री का बोझ और समाज की अदालत

वक्त अपनी रफ़्तार से गुज़रता रहा और जैसे-तैसे मैंने ग्रेजुएशन की डिग्री हासिल कर ली। कागज़ के उस टुकड़े पर मेरी तीन साल की मेहनत और अम्मी-अब्बू की हज़ारों कुर्बानियां दर्ज थीं, लेकिन अफ़सोस, उस कागज़ में इतनी ताक़त नहीं थी कि वह हमारे घर के चूल्हे की आग को मुस्तकिल (Permanent) कर सके। घर वालों की हिम्मत अब जवाब दे चुकी थी। उनकी खामोशी अब चीख-चीख कर कह रही थी कि—"बेटा, अब बहुत पढ़ लिए, अब कुछ हाथ में भी तो आए।"

21 साल की उम्र—यह वह उम्र है जहाँ एक तरफ सपने परवान चढ़ते हैं और दूसरी तरफ समाज की अदालत में आपका मुकदमा शुरू हो जाता है। रिश्तेदारों और पड़ोसियों की नज़रें अब मेरे 'नंबरों' पर नहीं, बल्कि मेरी 'जेब' पर थीं। हर महफिल, हर शादी और हर मुलाकात का अंत एक ही सवाल पर होता—"आसिफ, क्या काम करते हो? आगे क्या सोचा है? सरकारी नौकरी कब लगेगी?"

उन सवालों का मेरे पास कोई जवाब नहीं था। मैं अक्सर अकेले में बैठकर सोचता कि मैं 'न इधर का रहा, न उधर का'। अगर मैं अनपढ़ होता, तो शायद किसी भी कारखाने में मज़दूरी कर लेता, ईंटें ढो लेता या रिक्शा चला लेता—और मुझे कोई शर्म न आती।

लेकिन इस 'शिक्षा' ने मुझे एक ऐसी ऊँचाई पर खड़ा कर दिया था जहाँ से नीचे गिरना मुझे मौत जैसा लगता था। मेरी डिग्री मेरे पैरों की बेड़ियाँ बन चुकी थी। छोटा काम करने में शर्म आती थी और बड़ा काम मेरी पहुँच से बाहर था।

यही वह कड़वा सच है जिससे आज भारत के करोड़ों नौजवान गुज़र रहे हैं। बेरोज़गारी सिर्फ आँकड़ा नहीं है, यह एक 'मानसिक ज़हर' है। जब हम पढ़ते हैं, तो हमें सिखाया जाता है कि हम 'नौकरी' के लिए बने हैं। लेकिन जब हम बाहर निकलते हैं, तो हज़ारों की जगह पर लाखों की भीड़ और भ्रष्टाचार की दीवारें मिलती हैं। सरकारी नौकरी का सपना एक ऐसे जुए की तरह है जहाँ वक्त, जवानी और पैसा—सब दांव पर लगा होता है।

मेरे पास न तो दोबारा कोचिंग करने का वक्त था, न ही घर वालों के पास इतना पैसा कि वे मुझे सालों तक बिठाकर खिला सकें। मुझे लगने लगा था कि मैं अपने ही घर में एक 'बोझ' बन चुका हूँ। वह लड़का, जिसे कभी बिरादरी का 'सूरज' कहा गया था, अब ग्रहण की चपेट में था। मुझे अहसास होने लगा कि शायद 'किस्मत' ने मुझे सिर्फ हराने के लिए ही मैदान में उतारा था।

9: उलझती राहें और नाकाम तजुर्बे

जब रास्ते धुंधले पड़ जाते हैं, तो हर कोई मशविरा देने वाला बन जाता है। मेरे घर में अब मेरी 'डिग्री' की नहीं, बल्कि 'दुकानदारी' की बातें होने लगी थीं। घर के बड़ों ने एक पंचायत सी बिठाई। कोई कहता—"फैक्ट्री में लग जाओ," तो कोई कहता—"बाहर चले जाओ।" अंत में घर वालों ने तय किया कि 'कॉस्मेटिक' (साज-श्रृंगार) की दुकान खोली जाए। उनके पास तर्क था कि बाजार में इसकी मांग हमेशा रहती है।

मैं चुप था। मेरी चुप्पी रज़ामंदी नहीं, बल्कि एक गहरी हार थी। बचपन से अब तक मैंने सिर्फ अपनी सुनी थी, अपनी पढ़ाई की ज़िद की थी, लेकिन आज मैं खाली हाथ था। इसलिए, मैंने पहली बार अपने घरवालों की बात मान ली। ₹1.5 लाख की पूंजी जुटाई गई—जो हमारे जैसे परिवार के लिए बहुत बड़ी रकम थी—और दुकान खुल गई।

लेकिन 'किस्मत' और 'व्यापार' के नियम अलग होते हैं। उस दुकान को चलने के लिए सब्र और वक्त चाहिए था, और मेरे पास वक्त की ही सबसे ज्यादा कमी थी। घर वालों को लग रहा था कि दुकान खुलते ही पैसों की बारिश होने लगेगी, लेकिन हकीकत यह थी कि पूंजी वहां फंस चुकी थी। एक साल भी नहीं बीता कि घरवालों का सब्र जवाब दे गया। अब नया मशविरा आया—"पंजाब चलो और वहां जूस की दुकान खोलो।" हमारी बिरादरी के बहुत से लोग वहां यही काम कर रहे थे और अच्छा कमा रहे थे।

मेरा दिमाग सुन्न हो चुका था। बी.कॉम की पढ़ाई, टॉप करने का गर्व, और भविष्य के वे बड़े सपने—अब जूस की मशीन और कॉस्मेटिक के डिब्बों के बीच दम तोड़ रहे थे। मुझे

ऐसा लग रहा था जैसे मैं किसी गहरे दलदल में फंसा हूँ, जहाँ मैं जितना निकलने की कोशिश करता हूँ, उतना ही धंसता जाता हूँ। मैं एक ऐसे बोझ के तले दब गया था जिसे न मैं उठा पा रहा था और न ही उतार पा रहा था।

मेरा पढ़ा-लिखा दिमाग अब काम करना बंद कर चुका था। मैं सिर्फ एक मशीन बन गया था जिसे दूसरे चला रहे थे।

10: आधुनिक प्रयोग और वक्त की परीक्षा

अक्सर कहा जाता है कि संकट के समय ही इंसान की असली मेधा (Intelligence) की परीक्षा होती है। मैं बी.कॉम का छात्र था, और खातों की बारीकियां मेरे रग-रग में बसी थीं। जब मैंने देखा कि पारंपरिक रास्तों से घर की आर्थिक स्थिति को बदलना नामुमकिन सा हो रहा है, तो मैंने अपनी शिक्षा और अपनी विश्लेषण क्षमता (Analytical Skills) को आधुनिक युग के सबसे चुनौतीपूर्ण क्षेत्र—'डिजिटल फाइनेंशियल मार्केट और ऑनलाइन ट्रेडिंग'—की ओर मोड़ने का फैसला किया।

मेरा उद्देश्य बहुत स्पष्ट और नेक था। मैं चाहता था कि जो सुख-सुविधाएं मेरे परिवार को अब तक नहीं मिल सकीं, उन्हें मैं अपनी दिमागी काबिलियत से हासिल करूँ। मैंने बाज़ार के उतार-चढ़ाव, आंकड़ों के खेल और वैश्विक अर्थव्यवस्था की हलचलों का गहराई से अध्ययन किया। एक टॉपर होने के नाते, मेरा आत्मविश्वास बुलंद था कि मैं अपनी रिसर्च से वह परिणाम हासिल कर लूँगा जो आम लोग नहीं कर पाते।

मैंने इस क्षेत्र में अपनी पूरी ऊर्जा और संसाधन लगा दिए। लेकिन बाज़ार का एक कड़वा सच है—वह कभी-कभी सबसे काबिल इंसान को भी अपनी अनिश्चितता (Volatility) से चौंका देता है। मैंने जो रणनीतियाँ बनाई थीं, वे कागज़ पर और लॉजिक में बिल्कुल सटीक थीं, लेकिन बाहरी वैश्विक परिस्थितियों और अचानक आए बदलावों ने मुझे वह परिणाम नहीं दिए जिसकी मुझे और मेरे परिवार को उम्मीद थी।

यह कोई 'हार' नहीं थी, बल्कि एक 'मंहगा तजुर्बा' था। मुझे अहसास हुआ कि कभी-कभी आपकी मेहनत और आपकी नीयत दोनों साफ़ होने के बावजूद, 'परिस्थिति' आप पर हावी हो सकती है। वह दौर मानसिक रूप से बहुत थकाने वाला था। एक तरफ मेरा पढ़ा-लिखा स्वाभिमान था और दूसरी तरफ वह वास्तविकता जो मेरे हक़ में नहीं थी।

मैं उस मोड़ पर खड़ा था जहाँ मुझे यह स्वीकार करना पड़ा कि जीवन में कभी-कभी 'पीछे हटना' हार नहीं होती, बल्कि एक नई शुरुआत के लिए 'कदम सिकोड़ना' होता है।

11: परछाइयों से युद्ध और एक भारी भूल

पंजाब की धरती पर कदम रखते ही मैंने खुद को पूरी तरह काम में झोंक दिया। वह टॉपर लड़का, जो कभी किताबों के पन्ने पलटता था, अब सुबह से शाम तक जूस की मशीन और ग्राहकों के बीच पसीना बहा रहा था। मेरी मेहनत रंग लाने लगी और काम रफ़्तार पकड़ने लगा। लेकिन मेरा मन अब भी उन 'डिजिटल ग्राफ्स' में उलझा हुआ था। मुझे लगा था कि पंजाब की कमाई से मैं अपने पुराने वित्तीय घाटे को भर दूँगा और फिर से अपने परिवार का वही चमकता हुआ 'सितारा' बन जाऊँगा।

इसी धुन में, मैंने अपनी शुरुआती छह महीनों की खून-पसीने की कमाई को दोबारा उसी डिजिटल मार्केट के जोखिम में लगा दिया। बदकिस्मती से, बाज़ार ने एक बार फिर मेरा साथ नहीं दिया और मैंने वह सब कुछ खो दिया जो मैंने दिन-रात एक करके कमाया था। उस पल मेरा आत्मविश्वास पूरी तरह बिखर गया। मुझे लगा कि मैं अब कभी अपने घर वालों की नज़रों में वह 'भरोसा' वापस नहीं ला पाऊँगा।

यहीं मुझसे वह भूल हुई जो मेरी ज़िन्दगी का सबसे बड़ा बोझ बन गई। एक भारी मानसिक दबाव और अपनों को छोटा न दिखने की चाहत में, मैंने सच को छिपाने के लिए एक 'सफेद झूठ' का सहारा लिया। मैंने बताया कि नुकसान डेढ़ लाख का हुआ है। मेरा तर्क यह था कि अगर मैं बड़ी रकम बताऊंगा, तो घर वालों को लगेगा कि मेरी कमाई बहुत अच्छी हुई थी, बस पैसा हाथ से निकल गया। मैं अपनी 'नाकामी' को 'बड़े मुनाफे' के पर्दे के पीछे छिपाना चाहता था।

लेकिन यह झूठ मेरे गले की फांस बन गया। समाज, जो हमेशा किसी के गिरने का इंतज़ार करता है, उसे अपनी कल्पनाओं के पंख मिल गए। चारों तरफ अफवाहों का बाज़ार गर्म हो गया। किसी ने इसे 'सट्टा' कहा, तो किसी ने बेबुनियाद और घटिया इल्जाम लगाए। यहाँ तक कि कुछ लोगों ने मेरे चरित्र पर भी कीचड़ उछाला। सबसे ज्यादा दर्द तब हुआ जब मेरे अपने, जिनके लिए मैंने यह सब जोखिम उठाया था, वे भी इन अफवाहों के शोर में मेरे खिलाफ खड़े हो गए।

मैं चुप था। मेरी यह खामोशी हार नहीं थी, बल्कि उस गहरे दुख की गूँज थी कि एक पढ़ा-लिखा और होनहार लड़का आज अपनी ही एक मासूम सी 'प्रोटेक्शन वॉल' (झूठ) की वजह से दुनिया की नज़रों में गुनहगार बन गया था। मैंने वह सब सहा, क्योंकि उस वक्त सफाई देने की ताकत मुझमें नहीं थी। मुझे अहसास हुआ कि 'परिस्थिति' जब इंसान को तोड़ती है, तो वह उसके अपनों को भी उसके खिलाफ कर देती है। मैं अपने ही बनाए हुए एक मानसिक कारागार में कैद हो गया था।

12: राख से दोबारा उभरना

बदनामी का ज़हर किसी भी शारीरिक घाव से ज़्यादा गहरा होता है। मैं उस दौर की शारीरिक मज़दूरी और आर्थिक तंगी से तो बाहर निकल आया, लेकिन वह 'जिल्लत' और 'बदनामी' आज भी मेरी रूह में कहीं गहरे दबी हुई है। एक पढ़ा-लिखा और होनहार नौजवान, जो कभी अपने परिवार का गौरव था, आज सबकी नज़रों में एक गुनहगार बन चुका था। जिस भरोसे को मैंने बचपन से अपनी मेहनत और ईमानदारी से सींचा था, वह एक पल में रेत के महल की तरह ढह गया।

वह मेरा सबसे अंधकारमय समय था। जब आप अपनों का विश्वास खो देते हैं, तो पूरी दुनिया एक बेगाना रेगिस्तान लगने लगती है। मुझे खुद पर बेइंतहा गुस्सा आता—अपनी उस एक गलती पर, उस एक झूठ पर, और उस मसीहा बनने की नाकाम कोशिश पर। मेरा आत्मविश्वास इस कदर टूट चुका था कि कई बार मन में आत्मघाती विचार आने लगे। मुझे लगता था कि शायद मेरा वजूद ही इस दुनिया के लिए एक बोझ है।

हर चेहरा, जो कभी मुस्कुराहट के साथ मेरा स्वागत करता था, अब उसमें मुझे एक सवाल और एक इल्जाम नज़र आता। लोग मुझे एक 'असफल' और 'गुमराह' इंसान के तौर पर देखने लगे थे। भरोसे का नुकसान एक ऐसी भरपाई है जिसे दुनिया की कोई दौलत पूरी नहीं कर सकती। मैं अपनी ही नज़रों में गिर चुका था, और यही सबसे बड़ी सज़ा थी।

लेकिन, जैसा कि हर बड़ी कहानी में होता है, असली संघर्ष हारने में नहीं, बल्कि हारकर दोबारा खड़े होने में है। मैंने धीरे-धीरे यह समझना शुरू किया कि 'परिस्थितियाँ' हमें तोड़ सकती हैं, लेकिन वे हमारा 'अंत' तय नहीं कर सकतीं। मैंने तय किया कि मैं अपनी इस खामोशी को अपनी ताक़त बनाऊंगा। मैंने उन सभी कड़वे घूँटों को पिया और खुद को यह यकीन दिलाया कि 'इंसान की एक गलती उसकी पूरी पहचान नहीं हो सकती।'

आज मैं जब पीछे मुड़कर देखता हूँ, तो मुझे अहसास होता है कि वह जिल्लत और वह अकेलापन असल में एक 'भट्टी' थी, जिसने मुझे और भी मज़बूत बनाया। मैंने वह विश्वास दोबारा जीतने का लंबा सफर शुरू किया है। यह रास्ता कठिन है, क्योंकि खोया हुआ भरोसा कमाना नई मंज़िल पाने से कहीं ज़्यादा मुश्किल है, लेकिन मैं लड़ रहा हूँ।

13: आत्म-निर्वासन और चार साल का बोझ

इंसान दुनिया से लड़ सकता है, लेकिन जब वह खुद की नज़रों में मुजरिम बन जाए, तो जीत का हर रास्ता बंद नज़र आता है। पंजाब के उस वाकये और उस एक झूठ ने मेरे वजूद पर जो दाग लगाया था, वह वक्त के साथ धुंधला होने के बजाय और गहरा होता गया। चार साल बीत चुके थे, लेकिन मेरे लिए वक्त जैसे उस एक पल पर ठहर गया था। वह पुरानी गलती एक साए की तरह मेरे पीछे चलती थी। मैं जब भी आगे बढ़ने की कोशिश करता, वह जिल्लत मुझे पीछे खींच लेती।

इस दौरान घर में मेरी शादी की चर्चाएँ शुरू हुईं। मेरे अम्मी-अब्बू चाहते थे कि अब मैं घर बसा लूँ, शायद उन्हें लगा कि एक नया रिश्ता मेरे बिखरे हुए जीवन को समेट देगा। एक के बाद एक कई रिश्ते आए, लेकिन मैंने सबको सिरे से नकार दिया। घर वाले हैरान थे, रिश्तेदार सवाल करते थे, लेकिन मेरे पास अपनी 'ना' की जो वजह थी, वह मैं किसी को बता नहीं सकता था।

मेरे मन में एक मज़बूत गाँठ लग चुकी थी—**"एक गुनहगार और नाकाम इंसान किसी की ज़िंदगी में खुशियाँ कैसे ला सकता है?"**

मुझे लगता था कि जब तक मैं अपनी खोई हुई इज़्ज़त वापस नहीं पा लेता, जब तक मैं दोबारा आर्थिक रूप से मज़बूत होकर अपने परिवार का भरोसा नहीं जीत लेता, तब तक मुझे किसी का हाथ थामने का कोई हक नहीं है। मेरा इनकार महज़ एक 'ना' नहीं

था, बल्कि वह खुद को दी गई एक सज़ा थी। मैंने खुद को एक 'सोशल आइसोलेशन' (सामाजिक अलगाव) में डाल दिया था।

मैं अक्सर तन्हाई में सोचता कि क्या वह टॉपर आसिफ कभी वापस आएगा? क्या मैं कभी उस बोझ से आज़ाद हो पाऊँगा जो मैंने चार साल पहले अपने कन्धों पर रखा था?

शादी और खुशियों को ठुकराकर मैं असल में खुद को यह साबित करना चाहता था कि मैं अभी 'तपस्या' में हूँ। मैंने तय कर लिया था कि जब तक मैं कामयाबी की उस दहलीज़ को दोबारा नहीं छू लेता जहाँ से मैं गिरा था, तब तक मैं किसी भी बंधन में नहीं बंधूंगा।

यह मेरा आत्म-निर्वासन था, जहाँ मैं अपनी गलतियों की आग में खुद को तपा रहा था ताकि एक दिन कुन्दन बनकर बाहर निकल सकूँ।

14: खुद की अदालत और अपना ही कटघरा

दुनिया की अदालत और खुद की अदालत में एक बहुत बड़ा फर्क होता है। दुनिया अक्सर आपको उतनी बेरहमी से नहीं देखती, जितनी बेरहमी से आप खुद को देखते हैं। चार साल बीत जाने के बाद भी, मेरे घर वाले और मेरी बिरादरी मुझे अभी भी 'अपना' ही मानती थी। उनके लिए मैं शायद वह लड़का था जिसकी किस्मत ने वक्त पर साथ नहीं दिया, या जिसने मेहनत तो की पर नतीजा नहीं मिला। उनकी नज़रों में मैं अभी पूरी तरह 'बुरा' नहीं बना था।

लेकिन मेरी अपनी अदालत का फैसला कुछ और ही था।

जब मैं तन्हाई में बैठता, तो मेरा अपना ज़मीर (Conscience) मेरे सामने खड़ा हो जाता। वह मुझसे पूछता—"आसिफ, कहाँ है वह टॉपर? कहाँ है वह उम्मीद जिसकी मिसाल देकर बीस बच्चों ने स्कूल में दाखिला लिया था?" वह एक झूठ, जो मैंने अपनी इज़्ज़त बचाने के लिए बोला था, दूसरों के लिए शायद एक धुंधली याद थी, पर मेरे लिए वह एक ऐसा ज़ख्म था जो हर रोज़ हरा हो जाता था।

मुझे महसूस होता कि मैं सबके साथ 'धोखा' कर रहा हूँ। जब भी कोई मुझसे प्यार से मिलता या घर वाले मेरी शादी की बात करते, तो मुझे लगता कि मैं इस प्यार और इस इज़्ज़त के काबिल नहीं हूँ। मेरा आत्मसम्मान (Self-esteem) इतना टूट चुका था कि मुझे सबकी साफ़ और नेक नज़रों में भी अपने लिए 'गुनाहगार' होने की परछाईं दिखती थी।

शादी के रिश्तों को मना करना असल में समाज से नफरत नहीं थी, बल्कि खुद से एक जंग थी। मुझे लगता था कि अगर मैंने आज खुशियाँ स्वीकार कर लीं, तो मैं अपनी उस हार से कभी समझौता नहीं कर पाऊँगा। मैं खुद को तब तक 'सज़ा' देना चाहता था जब तक कि मैं खुद की नज़रों में फिर से खड़ा न हो जाऊँ। यह एक अजीब कशमकश थी—बाहर सब कुछ सामान्य लग रहा था, पर मेरे अंदर एक तूफान था जो थमने का नाम नहीं ले रहा था।

मैं एक ऐसे कैदी की तरह था जिसने खुद ही अपनी जेल बनाई थी और खुद ही उसकी चाबी फेंक दी थी। मुझे किसी और ने मुजरिम नहीं ठहराया था, मैंने खुद को **'गुनाहगार'** करार दे दिया था।

15: 8 फरवरी—एक नया सवेरा

वक्त की सबसे बड़ी खूबी यह है कि वह बदलता ज़रूर है। 2024 के खत्म होते-होते, मेरे अंदर जमी वह बर्फ पिघलने लगी थी। चार साल के उस आत्म-निर्वासन ने मुझे यह तो सिखा दिया था कि मैं अपनी गलतियों का कैदी हूँ, लेकिन उसी वक्त ने मुझे यह भी महसूस कराया कि अतीत की राख में बैठकर भविष्य को जलाना समझदारी नहीं है।

साल 2025 मेरे लिए एक नई उम्मीद लेकर आया। मेरे दिल के किसी कोने से आवाज़ आई कि—"आसिफ, अब खुद को माफ़ करने का वक्त आ गया है। इस बोझ को ढोते हुए तुम थक चुके हो, अब इसे उतारने और एक नई ज़िंदगी शुरू करने का मौका खुद को दो।"

इधर घर वालों का दबाव और उनकी उम्मीदें भी अपनी चरम सीमा पर थीं। वे चाहते थे कि अब उनके बेटे के जीवन में खुशियाँ लौटें। इस बार, जब शादी का प्रस्ताव आया, तो मैंने 'ना' नहीं कहा। वह 'हाँ' सिर्फ एक शादी के लिए नहीं थी, बल्कि वह 'हाँ' खुद को दोबारा ज़िंदगी से जोड़ने के लिए थी। मैंने तय किया कि अब मैं अपनी पुरानी पहचान और उस 4 साल पुराने साये को पीछे छोड़ दूंगा।

और फिर वह दिन आया—8 फरवरी 2025।

वह तारीख मेरी ज़िंदगी के कैलेंडर में एक नई लकीर खींच गई। उस दिन जब मैंने सेहरा बांधा, तो मुझे महसूस हुआ कि यह सिर्फ एक रस्म नहीं है, बल्कि यह एक वादा

है—खुद से और अपने परिवार से। शादी के उस खुशनुमा माहौल में, अपनों की मुस्कुराहटों के बीच, मुझे वह पुराना 'भरोसा' दोबारा लौटता हुआ महसूस हुआ।

पहली बार, मुझे खुद को 'गुनाहगार' कहने की ज़रूरत महसूस नहीं हुई।

जब मैंने नया जीवन शुरू किया, तो मुझे अहसास हुआ कि 'कामयाबी' सिर्फ मार्कशीट या पैसों में नहीं होती, बल्कि हारकर दोबारा मुस्कुराने और अपनों का हाथ थामने में भी होती है। 8 फरवरी ने मेरे उस 4 साल पुराने बोझ को काफी हद तक हल्का कर दिया। अब मेरे पास न केवल एक नई ज़िम्मेदारी थी, बल्कि एक नया मकसद भी था।

16: वापसी—मार्कशीट से मार्केट तक

शादी के बाद ज़िंदगी ने जो करवट ली, वह किसी चमत्कार से कम नहीं थी। 8 फरवरी को शुरू हुई नई ज़िंदगी ने मुझे वह मानसिक सुकून दिया जिसकी तलाश में मैं बरसों से भटक रहा था। और फिर आया वह ऐतिहासिक दिन—**8 अप्रैल 2025।**

मेरे पास ऐक्सिस बैंक (Axis Bank) की ओर से जॉब ऑफर था।

जब मैंने वह ईमेल पढ़ा, तो मेरी आँखों के सामने वह पुराना आसिफ आ गया जो बी.कॉम में टॉप करने के बाद गलियों में भटक रहा था। वह 4 साल की जिल्लत, वह 'गुनाहगार' होने का एहसास, और वह 'झूठ' का बोझ—सब एक पल में हवा हो गए। मैंने बिना एक पल गंवाए उस ऑफर को स्वीकार कर लिया। यह सिर्फ एक नौकरी नहीं थी, यह समाज के उन तमाम तानों का जवाब था जो मुझे 'नाकाम' कह रहे थे।

बैंक की उस कुर्सी पर बैठना मेरे लिए किसी सिंहासन पर बैठने जैसा था। मैंने जो पहचान खो दी थी, जो आत्मविश्वास धूल में मिल चुका था, वह अब दोबारा मेरी आँखों में चमक रहा था। घर वालों के चेहरे पर जो सुकून और गर्व मैंने देखा, उसने मेरे बरसों पुराने ज़ख्मों को भर दिया। अब मैं बोझ नहीं था, मैं फिर से अपने परिवार की ढाल बन चुका था।

लेकिन, दुनिया का दस्तूर भी बड़ा अजीब है। जब आप गिरते हैं, तो लोग हंसते हैं, और जब आप उठते हैं, तो वही लोग जलते हैं। मेरी इस कामयाबी से जहाँ मेरा घर रौशन था,

वहीं कुछ रिश्तेदारों और तथाकथित 'शुभचिंतकों' के चेहरों पर मायूसी छा गई। उन्हें शायद यह रास नहीं आया कि जिस लड़के को उन्होंने 'खत्म' मान लिया था, जिसे 'जुआरी' या 'भटका हुआ' कहकर बदनाम किया था, वह आज एक सम्मानजनक पद पर बैठा है।

उनकी नफरत और जलन ने मुझे एक बात साफ कर दी—"लोग आपसे तभी तक प्यार करते हैं जब तक आप उनके बराबर या उनसे नीचे होते हैं। जैसे ही आप उनसे आगे निकलते हैं, आप उनकी आँखों में खटकने लगते हैं।"

पर अब मुझे फर्क नहीं पड़ता था। मैंने अपनी जंग खुद से लड़ी थी और खुद ही जीती थी। 8 अप्रैल ने मुझे मेरी खोई हुई इज़्ज़त वापस दे दी। अब मैं किसी की नज़र में 'गुनाहगार' नहीं, बल्कि अपनी मेहनत और ईमानदारी से खड़ा हुआ एक 'प्रोफेशनल' था।

17: अपनों का विश्वासघात और चोट पर चोट

ज़िंदगी जब आपको संभलने का मौका देती है, तो कभी-कभी वह आपकी परीक्षा लेने के लिए फिर से एक इम्तिहान खड़ा कर देती है। **11 मई** का वह दिन मेरी यादों में एक काले साये की तरह दर्ज है।

मैं बैंक जा रहा था, आँखों में करियर के सपने थे और दिल में अपनी खोई हुई इज़्ज़त पाने का सुकून। लेकिन रास्ते में हुए एक भयानक एक्सीडेंट ने सब कुछ थाम दिया। पैर टूट चुका था और मुझे अगले 5 महीने बिस्तर पर बिताने पड़े।

लेकिन बिस्तर पर पड़े उस लाचार शरीर को जो दर्द एक्सीडेंट ने दिया, उससे कहीं ज़्यादा गहरा घाव मेरे अपने सगे भाई ने मेरे रूह पर लगाया।

मेरा छोटा भाई, जिसे शायद अपना नाम तक सही से लिखना नहीं आता था, वह किसी बाहरी व्यक्ति के बहकावे में आ गया। उसने मेरी उस 4 साल पुरानी गलती और उस एक 'सफ़ेद झूठ' को फिर से हवा देनी शुरू कर दी। उसने सोचा कि अगर वह मुझ पर कीचड़ उछालेगा, तो शायद उसका अपना नाम रोशन हो जाएगा। वह परिवार की नज़रों में खुद को 'ईमानदार' और मुझे 'गुनहगार' साबित करने की होड़ में लग गया।

सबसे ज़्यादा तकलीफदेह यह था कि घर वालों ने भी उसका साथ दिया। चूँकि पहले भी एक बार 'ऑनलाइन ट्रेडिंग' वाला वाकया हो चुका था, इसलिए लोगों के लिए दोबारा मुझ पर शक करना बहुत आसान था। उन्होंने मेरे भाई की बातों पर यकीन कर लिया।

समाज ने एक बार फिर मुझे उसी कठघरे में खड़ा कर दिया जहाँ से मैं बड़ी मुश्किल से निकला था।

मैं बिस्तर पर बेबस पड़ा था, रोता रहा और खुद से पूछता रहा—**"क्या खून के रिश्ते भी इतने कमज़ोर हो सकते हैं?"**

मेरा अपना भाई, जिसकी तरक्की की मैंने हमेशा दुआ की थी, आज वही मेरी बदनामी का जश्न मना रहा था। वह अकेलापन जो मैंने 4 साल पहले महसूस किया था, वह एक बार फिर लौट आया। पर इस बार दर्द दोगुना था, क्योंकि वार किसी गैर ने नहीं, बल्कि मेरे अपने भाई ने किया था।

मेरी मेहनत, मेरी बैंक की नौकरी और मेरा नया जीवन—सब कुछ उस नफरत की आग में झुलसने लगा। मैं फिर से वही अकेला आसिफ बन गया था, जिसकी आँखों में आंसू थे और दिल में अपनों के लिए बेइंतहा सवाल।

18: नई पहचान और अटूट फैसला

वक्त ने एक बार फिर करवट ली। एक्सीडेंट के उन 5 दर्दनाक महीनों और घर के उस जहरीले माहौल के बाद, मैंने तय किया कि मैं इन जंजीरों को तोड़कर बाहर निकलूँगा। आज मैं **'PB Partners'** में **मोटर इंश्योरेंस विभाग** में **'रिलेशनशिप मैनेजर'** के पद पर कार्यरत हूँ। यह मेरी मेहनत और ऊपर वाले के इंसाफ का सबूत है कि तमाम बाधाओं के बावजूद मैं आज भी सम्मान के साथ अपने पैरों पर खड़ा हूँ।

लेकिन यह कामयाबी जितनी सुनहरी है, इसके पीछे का पारिवारिक सच उतना ही काला है। मेरा छोटा भाई, जिसने मेरी पुरानी गलतियों को ढाल बनाकर अपनी झूठी साख बनानी चाही, वह आज भी अपनी हरकतों से बाज़ नहीं आता। उसने नीचता की सारी हदें पार करते हुए मेरी बदनामी का जाल मेरे ससुराल तक फैला दिया। वह रिश्ता, जो इंसान की इज़्ज़त और भरोसे की बुनियाद पर टिका होता है, उसने वहां भी ज़हर घोलने की कोशिश की।

एक सगा भाई, जो मुसीबत में ढाल होना चाहिए था, वही आज मेरे वजूद को मिटाने पर तुला है। इस जिल्लत और विश्वासघात ने मुझे एक ऐसा फैसला लेने पर मजबूर कर दिया है जो शायद बहुत कठोर लगे, पर आत्मसम्मान के लिए ज़रूरी है।

मेरा अंतिम फैसला:

इस किताब के माध्यम से मैं यह बात पूरी दुनिया और अपने समाज के सामने रखना चाहता हूँ कि—मैं अपने सगे भाई से अब इस ज़िंदगी में कभी नहीं मिलूँगा। यह नफरत नहीं है, यह उस भरोसे की मौत है जिसे उसने खुद अपने हाथों से मारा है। जिसने मेरे संघर्षों का मजाक उड़ाया, जिसने मेरी लाचारी का फायदा उठाकर मेरी इज़्ज़त पर वार किया, उसके लिए मेरे जीवन में अब कोई जगह नहीं है। कुछ जख्म ऐसे होते हैं जिन्हें भरने के लिए उन्हें छोड़ देना ही बेहतर होता है।

उपसंहार: मेरी कहानी, मेरी जुबानी

मेरी यह दास्तां—सरकारी स्कूल की उस 120 रुपये की फीस से शुरू होकर 'PB Partners' के केबिन तक पहुँचने की—महज़ एक करियर की कहानी नहीं है। यह कहानी है उस 'टॉपर' की जिसने दुनिया जीती, फिर खुद को हारा हुआ महसूस किया, बदनामी का घूँट पिया, अपनों का धोखा सहा और फिर से शून्य से शुरुआत की।

मैं आज उन तमाम लोगों से कहना चाहता हूँ:
गलती सबसे होती है, लेकिन अपनी गलती को स्वीकार कर आगे बढ़ना ही असली मर्दानगी है।

कामयाबी सबको अच्छी लगती है, लेकिन आपकी सबसे बड़ी परीक्षा तब होती है जब आप गिरते हैं। उस वक्त जो आपके साथ खड़ा हो, वही आपका अपना है।

खून के रिश्ते हमेशा वफादार नहीं होते। कभी-कभी आपको अपनी शांति के लिए अपनों को भी पीछे छोड़ना पड़ता है।

आज मैं अपनी पत्नी, अपने काम और अपने स्वाभिमान के साथ खुश हूँ। मैं अब उस 4 साल पुराने साये से आज़ाद हूँ। रिश्तेदारों की जलन और भाई की साजिशें अब मेरे हौसलों को नहीं तोड़ सकतीं, क्योंकि मैंने जलकर निखरना सीख लिया है।

— समाप्त —

किताब के अंदर का संदेश (The Final Message)

मेरे प्यारे पाठकों,

मेरी यह कहानी महज़ शब्दों का मेल नहीं, बल्कि मेरे खून और पसीने से लिखी गई एक हकीकत है। इस किताब के माध्यम से मैं आप तक तीन सबसे ज़रूरी बातें पहुँचाना चाहता हूँ:

खुद को कभी कम न आंकें: अगर आप आज शून्य पर हैं, तो याद रखिए कि शून्य ही वह जगह है जहाँ से सबसे बड़ी गिनती शुरू होती है। 120 रुपये की फीस के लिए तरसने वाला लड़का अगर कॉर्पोरेट ऑफिस तक पहुँच सकता है, तो आप कुछ भी कर सकते हैं।

गलतियों से न भागें: हर इंसान से गलती होती है। लेकिन आपकी एक गलती आपका पूरा चरित्र (Character) तय नहीं करती। गिरना बुरा नहीं है, बल्कि गिरकर खड़े न होना सबसे बड़ी हार है। समाज आपको गिराने की कोशिश करेगा, लेकिन आपको अपनी नज़रों में खड़ा रहना है।

रिश्तों की पहचान: हर हाथ थामने वाला 'अपना' नहीं होता। कभी-कभी आपके सबसे गहरे ज़ख्म उन लोगों से मिलते हैं जिनसे आपने मरहम की उम्मीद की होती है। अपने स्वाभिमान (Self-respect) की रक्षा करें, चाहे उसके लिए आपको अपनों से ही दूरी क्यों न बनानी पड़े।

मैं आज जहाँ हूँ, अपनी मेहनत और अल्लाह के रहम की वजह से हूँ। अगर मेरी यह कहानी किसी एक भी टूटते हुए इंसान को दोबारा उठने की हिम्मत दे सकी, तो मैं समझूँगा कि मेरा यह संघर्ष सफल रहा।

हार मत मानिए, क्योंकि सूरज को डूबने के बाद दोबारा निकलने से दुनिया की कोई ताकत नहीं रोक सकती।

— आपका अपना,

आसिफ

आसिफ,
राख से उभार
लेखक: आसिफ